

## एक अधूरा-सा पता...

हमेशा की तरह समंदर आज भी गरज रहा है... बेचैन ! विशाल समंदर के अन्तःस्थल में समायी बेचैनी को छोटी-बड़ी लहरें उमड़-घुमड़ कर किनारों पर सिर पटक-पटककर अभिव्यक्त कर रही हैं। किनारा फिर भी अविचलित है, शांत है... साधना में लीन किसी साधक की तरह ध्यानमग्न... बाह्य-जगत से बेफिक्र... मौन।

मेरे अन्तःस्थल में भी कहीं एक बेचैन-सी याद टीस बनकर मुझे जाने-अनजाने परेशान करती है। मैं खो जाता हूँ कहीं उन यादों के समंदर में। समंदर की छोटी-बड़ी लहरें बहा ले जाती हैं मुझे दूर कहीं यादों के क्षितिज पर जहाँ से मैं स्पष्ट देख पाता हूँ रमा से मेरी मुलाकात का वह पहला दिन...

केमिस्ट्री प्रैक्टिकल्स का क्लास खत्म होते ही रमा अपनी सहेलियों के साथ लैब के बाहर कॉरिडोर में खड़ी शायद किसी का इंतजार कर रही थी, ऐसा ही लगा था तब। लैब से निकलते हुए अचानक मेरी नज़र उसकी आँखों पर पड़ी, उसकी आँखें मानो मुझे ही तलाश रही थीं। पल भर के लिए आँखें चार हुईं, परंतु इसे महज़ इतेफाक समझते हुए मैंने अपनी नज़रें हटा ली और जल्दी से अपने कदम को आगे बढ़ा दिया, रमा से परे। मेरी धड़कनें तेज़ थीं। सिर से पैर तक अजीब सी सिहरन महसूस कर पा रहा था। दिसंबर की उस ठण्ड में मैं पसीने से तर-बतर था। उस दिन लैब में हम दोनों का टेबल कॉमन था। हम दोनों आमने-सामने थे... दोनों के बीच टेस्ट-ट्यूब तथा अन्य संयंत्रों से भरा रैक था। प्रैक्टिकल्स के दौरान उससे नज़रें बचा कर कई बार उसे घूरा था। टेबल के बीच का वह रैक बाधक नहीं एक सहायक के रूप में वहाँ तैनात था। वह भी मुझे बीच-बीच में जिज्ञासा भरी निगाहों से ताक रही थी। महज़ ग़लतफ़हमी मान कर उसकी जिज्ञासा को मैंने नज़र-अंदाज़ किया था। उससे नज़र मिलते ही मैंने अपनी नज़रों को उससे अलग किया था। वह हमेशा की तरह आज भी बेहद खूबसूरत लग रही थी। लाल सलवार-कुर्ते के ऊपर डाले सफ़ेद ऐप्रॉन में उसका सुर्ख चेहरा फब रहा था। खो गया था मैं उन हसीन पलों में कि अचानक पीछे से मेरे नाम के संबोधन से मैं ठिठक गया। अगले ही पल कदम बढ़ा कर रमा मेरे साथ-साथ कोरिडोर पर चल रही थी। मुझे अपनी आँखों पर यकीन तो नहीं हो रहा था पर यह रमा ही थी।

मुझसे नोट-बुक माँगा था उसने। वह मेरी ओर मुड़ते हुए मुझे एकटक देख रही थी। न जाने क्यों उससे मैं देर तक नज़रें मिलाने में असमर्थ था। सूर्य की चमचमाती आभा में आँखें चौंधिया गई हों जैसे। सांसें तेज थीं और धड़कनें बेकाबू। नोट-बुक देते हुए अपने हाथों की कंपकंपी को मैंने स्पष्ट महसूस किया था। मुझे अपनी आँखों पर यकीन नहीं हो रहा था। पल भर को मैं ख्वाबों में खो गया था। हाँ, इतना तो याद है कि उस रात मुझे नींद नहीं आई थी।

रमा के साथ मेरा वह पहला परिचय था। यूँ तो हम एक साथ ही कॉलेज में पढ़ते थे। सेक्शन भी एक ही था। अगर कुछ अलग था तो वह था दोनों के स्वभाव में... हम दोनों के स्वभाव में आकाश-पाताल का अंतर था। मैं गाँव के साधारण परिवार में पला-बढ़ा एक झंपू स्वभाव का सीधा-सादा लड़का था तो वह अमीर बाप की एक मुंहफट और फैशनेबल लड़की। सुन्दर इतनी कि स्वर्ग की परियां भी तरस खाएं। कॉलेज में उस पर सभी जान छिड़कते थे। पर वह थी कि किसी को घास तक भी नहीं डालती थी। किसी को भी अपने पास फटकने तक नहीं देती थी। इसलिए चाहकर भी मैंने उससे कभी बातचीत करने की कोशिश नहीं की थी। संभवतः उससे बातचीत करने की हिम्मत ही नहीं बटोर पाया था। शायद हमारी परस्पर-विरोधी स्वभाव ही इसका कारण रहा हो।

कॉपी वापस करते समय उसने मुझसे बड़ी ही सहजता से बातचीत की थी मानो हम एक-दूसरे को बरसों से जानते हों। बातचीत के दौरान उसने बेबाक होकर मुझसे कहा था, “देखो, मुझे पढ़ाई-वढ़ाई से कोई दिलचस्पी नहीं है। मैं तो बस डिग्री हासिल करना चाहती हूँ ताकि मेरे ब्रिगेडियर बाप को मेरे लिए कोई उच्च-प्रशिक्षित वर ढूँढ़ने में संकोच का सामना न करना पड़े।” मुझे उसकी बातों पर हंसी भी आई और रंज भी। उसके उस बेधड़क अपितु बेलाग वाक्ये को सुन मैंने अचरज भरी निगाह से उसकी ओर देखा, चुप रहा।

जहाँ कॉलेज के सभी लड़के रमा से बातचीत करने को तरसते थे तो वहीं वह मेरे अलावे किसी से भी बातचीत तो क्या मिलना तक पसंद नहीं करती थी। मैं समझ नहीं पाया, वह कैसे मेरी ज़िन्दगी के इतने करीब आ चुकी थी। बाद की बातचीत में उसने खुलेआम कहा था कि वह मेरी हैंडराइटिंग से बेहद आकर्षित हुई है। हम साथ-साथ उठते-बैठते। कैंटीन में हम घंटों बैठ कर बातें करते। इधर-उधर की ढेरों बातें होती। उन बातों में अक्सर हमारे बचपन के दिनों की बातें होती। परिवार की बातें होती। रमा के आग्रह से चाय-काफी पीते। बिल हमेशा वही चुकाती थी। मेरी भी क्या औकात थी? वैसे मैंने भी उससे साफ़-साफ़ बता दिया था और कहा था कि बिल चुकाने के मामले में उसके सामने निर्लज्ज होना भी मुझे मंजूर होगा। इसलिए मैंने कभी बिल चुकाने के लिए उसके सामने नाहक जेब टटोलने की झूठी कोशिश भी नहीं की। दरअसल मेरी आर्थिक हालत से वह वाकिफ हो चुकी थी। बिल चुकाते हुए कभी-कभार मुझसे कहती, शायद मजाक में ही, कि इसका लेखा-जोखा वह रखेगी और समय आने पर अदायगी ब्याज सहित करेगी। प्रत्युत्तर में मैं भी उससे कहता, बेशक ज़िम्मेदारी से, कि वह दिन उसके लिए सबसे खुशी का दिन होगा।

हमारे मिलने-जुलने का सिलसिला यूँ ही चल पड़ा। मिलने के दौरान धीरे-धीरे मुझे वह अच्छी लगने लगी थी। मैं उससे मिलने के बहाने ढूँढ़ता फिरता था। क्योंकि मुझे उसका साथ अच्छा लगने लगा था। मैं उसके साथ कॉलेज में ज्यादा-से-ज्यादा समय बीताने में खुशी का अनुभव करने लगा था। कॉलेज के बाहर भी हम मिलते थे। उसके सान्निध्य में मुझे गर्व महसूस होता था। ऐसा शायद स्वाभाविक ही था क्योंकि जिस लड़की के साथ मेलजोल बढ़ाने के लिए कॉलेज में सबकी नज़रें टिकी हुई थीं वह मेरे साथ बेधड़क और बेखौफ़ उठती-बैठती थी। आते-जाते लड़के ईर्ष्या से आग-बबूले होकर हमें घूरते। उन लड़कों की हरकतों को देख अक्सर मुझे वह कहा करती थी, “आजकल लड़की ने किसी लड़के के साथ उठ-बैठ क्या लिया, हँस कर ज़रा बात क्या कर ली कि लड़का तो चिपक ही जाता है मानो उसे प्रेम करने का खुला निमंत्रण मिल गया हो। प्रेम-प्रसंग में आगे बढ़ने के लिए हरी झंडी मिल गई हो जैसे।” उसका यह सतर्क-संकेत जो मेरे लिए भी हो सकता है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। चाहे कुछ भी हो, मैं अब बस उसे चाहने लगा था। मेरी आँखों में सिन्दूरी शाम की आभा धीरे-धीरे समाने लगी थी... सैकड़ों सपनों से लबरेज। मन-ही-मन मैंने उसके साथ ढेरों सपने संजो लिए थे। पर इसका इज़हार मैंने उससे कभी नहीं किया या यूँ कहें कि ऐसा करने का दुस्साहस बटोर पाने की सामर्थ्य तक मुझ में नहीं थी। क्योंकि हमारे बीच प्यार-व्यार की बातें तो कभी होती ही नहीं थी। बातचीत के दौरान कई बार वह मुझे आगाह कर देती, “अनिमेष, जो मैं तुमसे मिलती हूँ और बातें करती हूँ इसका कोई गलत मतलब नहीं निकाल लेना। प्यार-व्यार की गलतफ़हमी में मत उलझ जाना। दोस्त हैं बस, दोस्ती निभाएँगे... बस और कुछ नहीं।” एक तरफ तो उसकी इस साफ़गोई से मेरे दिल को सुकून मिलता था जबकि दूसरी तरफ ये सब बातें मानो मेरे अन्दर उसके और मेरे बीच एक सीमा-रेखा खींचती तथा रिश्ते का एक दायरा अंकित करती जिसके दरमियान बने रहने का बार-बार मुझे अहसास दिलाती। मैं भी रिश्ते के उस दायरे को निभाने का भरसक प्रयास करता ताकि उसे लांघने जैसी धृष्टता की सोच भी मन में कहीं

आ न पाए। मैं बस यही उम्मीद रखता कि मेरे प्रति रमा का विश्वास सदैव बना रहे और यूँ ही हम एक-दूसरे के साथ जुड़े रहें चाहे उस रिश्ते का कोई भी नाम क्यों न हो।

ऐसा भी होता था कि कभी यूँ ही बातें करते हुए अगर मेरा हाथ उससे अनजाने में कहीं छू जाता तो वह अपनी बड़ी-बड़ी कजराई आँखों से मुझे घूरती। कहती, मुझे टच करने की कोशिश गलती से भी मत करना वरना अपने ब्रिगेडियर बाप से कह दूँगी कि तुमने मुझे गलत ढंग से छुआ है... सेक्सुअल हरेसमेंट करने की कोशिश की है... इत्यादि-इत्यादि कहकर मुझे डराती। 'सेक्सुअल हरेसमेंट' जैसे शब्दों का इतनी सहजता से प्रयोग और वो भी एक लड़की के द्वारा किया जाना मुझे कहीं-न-कहीं अप्रस्तुत करता था। ऐसा मेरे स्वभाव के विपरीत था। मुझे समझ में नहीं आता था कि यह उसकी चेतावनी होती थी या महज मजाक होता था या फिर निहायत ही बचपने का चुलबुलापन। उसके इन बातों से मैं सजग ज़रूर हो जाता। मेरे अन्तःस्थल में रमा के प्रति उमड़ते प्रेम भाव को मैं सीमित रहने देता, उभरने से रोकता। संकुचित अवस्था में ही छोड़ देता, पनपने नहीं देता। फिर भी, पता नहीं क्यों मुझे वह अच्छी लगती थी। उसके साथ समय बीताना निहायत ही खुशनुमा होता था।

जब वह पहली बार अपने माता-पिता से मिलवाने अपने घर ले गई थी तो मैं किसी अनजाने भय से सिहरने लगा था। उसने मेरे मनःस्थिति को भांपते हुए मेरे भय का कारण पूछा था। पूछा था कि कहीं मेरे मन में चोरी-छुपे प्यार-व्यार तो नहीं पनप रहा है? फिर कहा था कि अगर मन में कोई मैल नहीं है और हृदय पाक-साफ़ है तो फिर किस बात का डर है? उसकी इस स्पष्टवादिता से मैं प्रभावित हुआ था। पर उसे क्या पता था कि मेरे दिल में उसके प्रति प्यार के बादल उमड़-घुमड़ कर बरसने को व्याकुल हो रहे हैं। उसके अल्हड़पन... उसकी साफगोई में मुझे निश्छल प्यार झलकता था। मन-ही-मन मैं उससे प्यार करने लगा था।

उसका कोई भाई नहीं था। उसकी माँ ने शायद इसलिए मुझे राखी के दिन आने को कहा था। पर उसने मुझे साफ़ तौर पर कहा था कि वह उन लड़कियों में से नहीं है कि जो लोगों के बीच राखी बाँध कर भाई-बहन के रिश्ते का दिखावा करते हैं। जबकि बाद में यह रिश्ता प्रेमी-प्रेमिका जोड़ी में बदल जाता है। उसने फिर स्पष्टतया कहा था कि "मैं तुम्हें राखी नहीं बाँध सकती। हम किसी रिश्ते में जुड़े रहना नहीं चाहते।"

ऐसा कहते हुए उसने आग्रह किया था, "तुम बस बहाने बना लेना। मत आना यहाँ मेरे घर। माँ को मैं संभाल लूँगी।" उसकी ये बातें मुझे विस्मित करतीं। मैं अपने मन में रमा के प्रति उमड़े प्यार को कोई निर्दिष्ट दिशा देने के लिए किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में असमर्थ था।

मुझे उसके इन बातों से ताज्जुब होता, मन में सवाल उठते कि आखिर वह चाहती क्या है। दरअसल ये रिश्ते ही तो हैं जिनके सहारे मनुष्य सामाजिक कहलाता है। भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका... वह चाहे कोई भी बंधन हो... कोई भी रिश्ता हो। पर इसके विपरीत किसी भी रिश्ते से सरोकार न रखने वाली रमा का व्यवहार मुझे प्रायः अचंभित करता। उसके ऐसे व्यवहार से कभी तो वह मुझे किसी नासमझ बच्ची सी लगती... मासूम और अबोध तो कभी एक उद्वंद, ठीठ और अनासक्त लड़की जिसके लिए प्यार शब्द निरर्थक और बेमानी है। अंततः मेरे लिए रमा महज एक अनबुझ-सी पहेली बन कर रह जाती। उस पहेली को सुलझाने की नाहक कोशिश न करते हुए मैंने यह निश्चय कर लिया कि अब रमा के लिए अपने मन में सुलगते प्यार की मद्धिम-सी लौ को वह जबरन बुझा देगा। वह वैसा ही करेगा जैसा रमा चाहती है... बिना किसी आसक्ति के एक अच्छा दोस्त बना रहेगा। यह निर्णय निश्चय ही मेरे लिए बेहद कष्टकर था। उसके साथ मिलने में, बातचीत करने में न जाने हृदय में अनायास ही एक तीव्र आसक्ति का भाव स्वतः जागृत हो ही जाता था। मैं कतई रमा से अपने आप को अलग करने में समर्थ नहीं हो पा

रहा था। इसलिए मैंने कहीं दूर चले जाने का निश्चय कर लिया। शहर से कहीं दूर ही नहीं बल्कि रमा की ज़िन्दगी से भी कहीं दूर... बहुत दूर, ताकि रमा को अपने जीवन से जबरन निकाल सकूँ !

रमा की ज़िन्दगी से दूर जाने के लिए फाइनल परीक्षाओं के बाद मैं गाँव चला गया। पर गाँव जाने का कारण रमा से मैंने माँ की बीमारी ही बताया था। मुझे छोड़ने रमा स्टेशन पर आई थी। उसने मुझे जल्दी वापस आ जाने को भी कहा था।

वहाँ गाँव में शुरूआती कई दिनों तक तो मैं उदास-सा रहने लगा। किसी भी काम में मन नहीं लगता था। पर मेरे गाँव आने के उद्देश्य का ध्यान आते ही मैं सजग हो गया और अपने आप को किसी भी काम में व्यस्त रखने लगा। खेती-गृहस्थी के काम में बाबा का हाथ बंटाने लगा। खेतों में हल जोतता। दिन भर कठिन परिश्रम करता ताकि रात में थका-हारा बेफिक्र चैन की नींद सो पाऊँ... रमा की यादों के बिना।

इसी बीच मेरे नाम की एक चिट्ठी मिली। मुझे यकीन नहीं आया। चिट्ठी रमा की थी। मेरे नाम उसके हाथ की वह पहली चिट्ठी थी। जिस चिट्ठी के लिए मैं कभी सपने संजोता था वह एक ऐसे मौके पर मिली कि जब मैं उसे भुलाने की कोशिश में लग गया था। चिट्ठी की डिलीवरी लगभग दो महीने के बाद हुई थी। क्योंकि पता अधूरा था। मैं सोच में पड़ गया कि ऐसी क्या बात हो गई कि रमा को चिट्ठी लिखने की जरूरत पड़ गई। किसी अनजाने आशंका से भयभीत होकर थरथराती उँगलियों से मैंने चिट्ठी खोली। अक्षर टेढ़े-मेढ़े थे। अस्थिर हाथों से लिखी उस बेमेल चिट्ठी के आशय को जानने के लिए सरसरी निगाह डाली और जल्दी-जल्दी मैं अंत तक पढ़ डाला। बड़े-बड़े अक्षरों में उसने लिखा था...

“अनिमेष,

माँ की तबियत कैसी है? मेरे पापा का तबादला हो गया है। किसी भी समय हमलोग यहाँ से चले जाएंगे। तुमसे मिलना चाहती हूँ। बहुत सी बातें हैं तुम्हें कहने को। एक अफसोस रह जाएगा अगर तुमसे न मिल सकूँ। अपने आप को कभी माफ़ नहीं कर पाऊँगी। तुम्हें सामना करने की हिम्मत जुटा पाऊँगी कि नहीं, कह नहीं सकती। तुम्हारी कमी महसूस कर रही हूँ। चिट्ठी से बता नहीं सकती। जल्दी आ जाना, कहीं देर न हो जाए। तुमसे प्यार करने लगी हूँ।

सिर्फ तुम्हारी,  
रमा”

चिट्ठी को कई बार पढ़ा था मैंने। मुझे तनिक भी यकीन नहीं हो पा रहा था कि रमा की चिट्ठी ऐसी भी हो सकती है। चिट्ठी में लिखे एक-एक वाक्य मुझे जितना विस्मित कर रही थी, अंत का वाक्य ‘तुमसे प्यार करने लगी हूँ’ और वे दो शब्द ‘सिर्फ तुम्हारी’ उतना ही रोमांचित कर रही थी। ‘प्यार’ और ‘रमा’ दो परस्पर-विरोधी शब्दों का मेल अचानक कुछ अचंभित कर रहा था पर चिट्ठी को पढ़कर जिस बात का अहसास मुझे हुआ वह यह था कि उसके स्वभाव के प्रतिकूल वह बेहद हताश लग रही थी। चंद दिनों में उसके स्वभाव में परिलक्षित ऐसा अप्रत्याशित बदलाव कतई विश्वसनीय नहीं था। पर कहीं-न-कहीं तो कोई बात थी जो मेरे समझ से परे थी। उसे जानने की उत्सुकता मुझे विचलित कर रही थी। चाहे कुछ भी रहा हो, ‘रमा मुझसे प्यार करती है’ यह जानकारी उससे मिलने की इच्छा प्रबल से प्रबलतर हो गई।

मैंने अपने आप को संयत करते हुए उसके घर गया। उसकी माँ ने दरवाजा खोल कर अंदर आने को कहा। वहाँ सब कुछ बदला हुआ लग रहा था। घर का माहौल पहले से बिल्कुल अलग था। एक अजीब-सी चुप्पी छायी हुई

थी। रमा आई भी पर चुपचाप नज़रें झुका कर झंपते हुए आगे निकल गई। कुछ भी न बोली। साँसें तेज थीं। उसकी आँखें कोरी थीं। उन आँखों की चमक ना जाने कहाँ खो गई थी मानो अब उसका कोई सपना शेष नहीं बचा था। जैसा कि उसने अपने पत्र में जल्दी आने को कहा था और यह भी लिखा था कि कहीं देर न हो जाए। शायद सचमुच देर हो चुकी थी... बहुत देर।

क्योंकि मैं उसमें आए बदलाव को स्पष्टतया देख पा रहा था। एक खास चीज़ ने मुझे चौंका ही दिया... वह थी उसकी ऊँगली में हीरे की एक चमकदार अंगूठी। ऊँगली को रमा अपने दुपट्टे से लपेट कर मेरी नज़रों से बचा कर निकल गई। पर मैं रमा से बेइंतेहा प्यार जो करता था... उसके इस व्यवहार को नज़रंदाज़ कैसे कर सकता था। मुझसे शायद कुछ छिपाना चाह रही थी वह। संभवतः वह 'इंगेजमेंट रिंग' थी जो उसने पहन रखी थी। अब मुझे उसमें आए उस अप्रत्याशित बदलाव को समझते देर नहीं लगी... उसकी शादी अचानक ही तय कर दी गई थी जिसके लिए शायद वह कतई तैयार नहीं थी।

उसकी माँ ने भी इसका खुलासा किया। ड्राइंग रूम में वे मेरे साथ बैठी थीं। उन्हें इसका दुःख था कि 'इंगेजमेंट सेरेमनी' में उन लोगों ने मुझे बुलाया नहीं था। ज़ल्दबाज़ी में इंगेजमेंट की रस्म अदायगी हुई थी, यही कारण बताया था उन्होंने मुझे नहीं बुलाने का। उसके पापा की इच्छा थी कि इस काम में देर नहीं होनी चाहिए। और, गिने-चुने लोगों के बीच ही निपटा दिया गया।

उन गिने-चुने शामिल लोगों में मुझे गिने जाने की किसी संभावना का मुमकिन होना असंभव था ? उस परिवार में मेरा अस्तित्व ही कहाँ था ?

मुझे बिना कुछ कहे रमा का यूँ पास से गुज़र जाना शायद उसकी माँ को भी अच्छा नहीं लगा था। "देखो, शादी तय होने पर रमा तुमसे कैसे लजा रही है।" उन्होंने अपने ढंग से मुझे समझाने की कोशिश की थी। उन्हें क्या पता कि रमा के हृदय में कैसी द्वंद्व चल रही होगी। उसके मुखमंडल पर पसरी हताशा और नाउम्मीदी से उसकी मनोदशा को मैं बखूबी समझ पा रहा था। वह शायद इस रिश्ते से संतुष्ट नहीं है। खुलेआम रिश्ते को विरोध कर पाने की स्थिति में भी नहीं है। शायद मुझसे भी कहने में उसे झिझक हो रही है। उसकी इस असहाय अवस्था उसके चेहरे पर साफ़ झलक रही थी।

परदे की ओट से रमा ने अपनी माँ की नज़रों से बचते-बचाते मुझे टकटकी निगाह से देखा था। डबडबाई आँखें शायद कुछ कहना चाह रही थीं।

"हमारी रमा रानी बन कर ससुराल में राज करेगी। खानदानी लोग हैं। पुरखों से बसा-बसाया व्यापार है।" बातचीत का सिलसिला जारी रखते हुए उसकी माँ ने जानकारी दी थी।

रमा की आँखें छलक कर आंसुओं की धार बहा रही थी। मैंने कनखियों से उसे वहीं खड़ा पाया।

उसकी इस दुःस्थिति के लिए मैं अपने आप को ज़िम्मेदार मानने लगा। मुझसे रहा नहीं गया, निराश हो कर मैंने जाने की अनुमति मांगी थी। उसकी माँ ने रमा को आवाज़ लगाई। पहले से दरवाज़े पर खड़ी रमा बैठक में आई। आंसुओं को पोंछ लिया था उसने। पर चेहरे पर उदासी का भाव अब भी मौजूद था।

"तुम लोग अब बातें करो। मैं चाय लेकर आती हूँ।" कहकर वे चली गईं।

रमा ने तह किए हुए एक कागज़ को छुपा कर मुझे पकड़ाया और कहा इसे घर में पढ़ना। उसकी चिट्ठी थी। उसके हाथ कांप रहे थे... होंठ पल भर को थर्राए थे... डबडबाई आँखों से आँखें मिलाना चाहा था पर पलकों ने साथ नहीं दिया।

माहौल की गंभीरता को हल्का करने के लिए जाते-जाते मैंने उसकी माँ के शब्दों को दोहराया था, “रमा, रिश्ता मुबारक हो ! तुम तो खुशकिस्मत हो... रानी बनकर ससुराल में राज करोगी। ”

उसने मेरी आँखों में आँखें गड़ा कर बेधड़क कहा था “तुम्हारी दासी बन कर भी जी लेती, अनिमेष पर...” कहते-कहते फफक कर रो पड़ी। आगे कुछ कह नहीं पायी। उदासी छा गई थी उसके चेहरे पर।

तीन साल की जान-पहचान में या यूँ कहें कि घनिष्ठता में जिस लफ्ज़ को सुनने के लिए मैं तरसता रहा, अपने-आप को सब्र की भट्टी में तपाता रहा... उसका इज़हार इस प्रकार से होगा मैंने कभी ऐसी आशा नहीं की थी। रमा की ये स्वीकारोक्ति आज भी मुझे उद्वेलित करता है। उसके कांपते हुए स्वर अब भी मेरी अंतरात्मा को झकझोरता है। उस रात हमेशा की तरह मुझे वह उनके विशालकाय बंगले के फाटक तक छोड़ने आई थी... शायद उसके विशाल हृदय के फाटक तक। रात के अँधेरे में भी मैंने उसके गाल पर लुढ़क आए आंसुओं को स्पष्ट देखा था। उसकी धड़कनों को महसूस किया था। उसकी स्नेहसिक्त आँखें मुझे निस्तब्ध निहार रही थीं। शायद प्रत्युत्तर में मुझसे कुछ सुनने को आशंसित थी। तभी घर के अंदर से किसी के पुकारने की आवाज़ से वह चौंक कर अपनी आंसुओं को दुपट्टे से पोंछते हुए अँधेरे में भाग कर दरवाजे को धीमे से खोला और चुपके से कमरे में दाखिल हो गई। उसके वे शब्द मेरे कानों में प्रतिध्वनित हो रहे थे। उस प्रतिध्वनि की उत्कटता क्रमशः तीव्र से तीव्रतर हो रही थी। मैं ठिठक कर खड़ा रहा वहाँ कुछ देर तक अंधरे में... किंकर्तव्यविमूढ़। वह वापस नहीं आई।

सचमुच मुझसे बड़ी देर हो गई। बोझिल मन से मैं होस्टल की तरफ बढ़ा। कमरे में आकर चिट्ठी को खोल कर पढ़ने लगा...

“तुमने बहुत देर कर दी, अनिमेष! पता नहीं यह चिट्ठी तुम्हें किस हालत में मिलेगी क्योंकि काफी इंतजार करने के बाद भी जब तुम नहीं आए तो मेरे अंतरात्मा में उत्पन्न बेचैनी को मैं इस चिट्ठी के जरिए तुम्हें बता देना आवश्यक समझती हूँ। अन्यथा मैं जीवन पर्यंत अपराधबोध से मुक्त नहीं हो पाऊँगी। मुझे तुम्हारी कमी का अहसास तब हुआ जब तुम अपने गाँव चले गए। उन दिनों एक-एक पल काटना मेरे लिए दूभर हो गया था। मुझे तुमसे प्यार जो हो गया था। तुमसे मिलने के लिए मैं बेतहासा तड़पने लगी थी। चिट्ठी लिखकर मेरे बुलाने के बावजूद भी जब तुम नहीं आए तो मुझे यह विश्वास हो गया कि तुम्हें मेरे जीवन से कोई दिलचस्पी नहीं है और न चाहते हुए भी पापा के शादी के प्रस्ताव को मैंने स्वीकार कर लिया। मेरी शादी पापा के बचपन के दोस्त के बेटे से जल्दबाजी में तय कर दी गई, इंगेजमेंट भी आनन-फानन में हो गई। न चाहते हुए भी मना नहीं कर पायी।

यूँ ही एक दिन तुम्हारा रूम-मेट रतन जो तुम्हारे गाँव का ही है, मुझे कॉलेज में मिल गया। मैंने उत्सुकतावश उससे तुम्हारी जानकारी लेनी चाही। मेरे पूछने पर उसने तुम्हारा जो पता बताया वह मेरे भेजे गए पत्र पर लिखे पते से अलग था। दरअसल मैंने गाँव का नाम तो सही लिखा था पर पते में तहसील का नाम ही नहीं लिखा था। रतन ने बताया था कि तुम्हारे गाँव के नाम का और भी कई गाँव हैं, इसलिए बिना तहसील लिखे पते की चिट्ठी देर से मिलती है। क्या करती मैं, तुम्हारे साथ बातचीत के दौरान जो भी याद रहा जल्दबाजी में वही पता लिख डाला था। ....आगे, उसने मुझे तुम्हारे बारे में सब कुछ बताया... मेरे साथ बिताए हर पल की जानकारी थी उसे... तुम्हें मुझसे बेइंतहा प्यार होने की बात... कई रातें जो तुमने उससे मेरी बातें कहते हुए जाग कर बिताई... और भी कई बातें। उसने यह भी बताया था कि मेरे स्वभाव के अनुरूप तुमने अपने को ढाल लिया और अपने प्यार की तिलांजलि ही दे डाली। मुझे भुलाने के लिए तुम गाँव चले गए, माँ की बीमारी का बहाना बनाकर।

उसने तुम्हारी बनाई एक खूबसूरत पेंटिंग भी दिखाई जिसमें तुमने मेरी मांग में सिन्दूर और माथे पर एक लाल बिंदी से मुझे एक विवाहिता के रूप में आँका था। मैं वो पेंटिंग मेरे साथ ले आई हूँ। तुम्हारी ख्वाबों की उस रमा को मैं हमेशा मेरे पास रखूंगी। तुम्हारे प्यार को उज्जीवित रखूंगी, कभी मलिन नहीं होने दूँगी।

मैं समझ सकती हूँ कि मैंने तुम्हें कितना दुःख दिया है... चोट पहुँचाई है। अब तो तुम्हारे बिना ही घुट-घुट कर जी लूँगी। प्रायश्चित्त करूँगी।

काश तुम्हारे प्यार को मैं समझ पाती !

काश तुम्हारा पता लेने रतन से मैं पहले मिल पाती !!

काश तुम आ ही जाते... तुम्हारे लिए पापा से मैं मिन्नतें कर लेती !!!

मुझे माफ़ कर देना, अनिमेष ! जानती हूँ, तुम्हारी स्वच्छल भावनाओं के प्रतिदान में मैं कुछ देने में असफल रही हूँ। बदले में मैंने तुम्हारे प्यार का गला घोटा है, जिसका मैं गुनहगार हूँ और जिसकी सजा के लिए शायद यह जन्म तो क्या मुझे कई जन्म भी लेने पड़े तो मुझे अफ़सोस न होगा।

तुम्हारी रमा”

इस हृदय-विदारक मनःस्थिति से कुछ उबर कर दो-एक दिन के बाद जब मैं रमा से मिलने उसके घर पर गया तो दरवाजे पर ताला लगा था। बंगले के माली से बस इतना ही पता चल पाया कि रमा के पापा के तबादले पर वे लोग शहर छोड़ कर चले गए हैं। वे लोग कहाँ गए आज तक पता नहीं चल पाया। उसके बाद न रमा कभी मिली और न ही उसकी कोई चिट्ठी। बस एक याद भर रह गई है। हाँ, अब रमा मेरे लिए बस एक तिक्त-मधुर याद बन कर रह गई है जो रह-रह कर मुझे बेचैन करती है...। बेचैन करती है अधूरे-से पते वाली वह चिट्ठी जिसने मेरे जीवन को भटकने के लिए मजबूर कर दिया।

\*\*\*